समग्र विकास : अवधारणा एवं कार्यनीति

राष्ट्रीय बहस/मंथन हेतु प्रसारित प्रारूप

भारत का अभ्युदय

स्वदेशी रूपरेखा

विकास हेतु राष्ट्रीय कार्यदल

स्वदेशी जागरण मंच

60, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली–110 001

दूरभाष : 3018175 • फैक्स : 3792881

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्ववेत

विषय वस्तु :

1. आज का संदर्भ और स्वदेशी अभियान की प्रांसगिकता
2. भारतीय जीवन दृष्टि – स्वदेशी संकल्पना
3. राष्ट्रीय लक्ष्य
4. भारतीय अर्थतंत्र – शक्तियाँ एवं दुर्बलताएँ
5. वर्तमान चुनौतियाँ
6. प्राथमिकताएँ
7. वैश्वीकरण और स्वदेशी रणनीति
8. सही रास्ता : स्वदेशी राह व कार्यनीति

    (क)1 (अ) जन चेतना

    (आ) अर्थायाम का केंद्र बिंदु

    (इ) आत्मनिर्भरता एवं विकेंद्रीकरण

    2 कृषि एवं पशुपालन

    3 उद्योग एवं व्यापार

    4 ऊर्जा

    5 पूँजी

    6 विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी

    7 शिक्षा

    8 शिक्षा

    9 महिला और विकास

    10 न्याय व्यवस्था

    (ख)1 आमजन की पहल

    2 सामाजिक संस्थाओं की भूमिका

    3 शिक्षण संस्थाओं की भूमिका

    4 औद्योगिक क्षेत्र की भूमिका

    5 सरकार की भूमिका

9. संक्रमण – आज के यथार्थ से आदर्श की ओर
10. संकल्प

भारत का अभ्युदय – स्वदेशी रूपरेखा

1. आज का संदर्भ और स्वदेशी अभियान की प्रासंगिकता

1.1. स्वदेशी अभियान – राष्ट्रीय घटना चक्र

- भारतीय अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण के प्रति प्रारंभिक आकर्षण और व्यामोह के बाद, अब देश में आंतरिक मूल्यांकन की प्रक्रिया चल रही है।
- स्वदेशी जागरण मंच के तत्वावधान में विगत पाँच वर्षों से राष्ट्रीय जन–जागरण का कार्य चल रहा है एवं इसका व्यापक प्रभाव हुआ है। कई पहलुओं पर विस्तार एवं गहराई से विचार करने की आवश्यकता महसूस हुई है।
- इसी कड़ी में सर्वोदय, आज़ादी बचाओ आंदोलन, समाजवादी अभियान, नेशनल वर्किंग ग्रुप ऑन पेटेंट लॉज़, कर्नाटक राज्य रैयत संघ आदि संगठनों तथा स्थानीय स्तर पर अनेक लोगों व समूहों द्वारा प्रयास किए गए हैं। लेकिन इस चिंतन एवं प्रयास को समग्र दृष्टि के आधार पर आगे बढ़ाने की आवश्यकता है।

1.2 अंतरराष्ट्रीय घटना चक्र

- कम्युनिज्म के पतन के बाद दुनिया में शोषणकारी पूँजीवाद की ओर एकतरफा आकर्षण एवं खिंचाव बढ़ा है।
- अमरीकी प्रतिमानों की अनेक विफलताएँ हैं। बढ़ती विषमताएँ एवं बेरोजगारी, ऊर्जा एवं पर्यावरण का संकट, सामाजिक विघटन एवं टूटते परिवार, अपराध एवं आतंकवाद की बढ़ती प्रवृत्तियाँ इन विफलताओं के उदाहरण हैं। इसके बावजूद अमरीकी विकास शैली पूरी दुनिया पर थोपने के प्रयास हो रहे हैं।
- दुनिया के अनेक देशों के नीति निर्धारण एवं संचालन में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का बढ़ता प्रभाव, साम्राज्यवाद को नए रूप में प्रस्तुत कर रहा है।
- पूरा विश्व नए विकल्प की खोज में है।

1.3 आज़ादी के 50 वर्षों का संदर्भ

- पिछले दशकों में अपना देश कुछ क्षेत्रों में आगे बढ़ा है। औद्योगिक संरचना,

कृषि उत्पादन एवं आधुनिक वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति हुई है तथा प्रशिक्षित जनशक्ति देश में उपलब्ध है।

- बड़े पैमाने पर परंपरागत काम–धंधों में ह्रास तथा बढ़ती जनसंख्या के लिए रोजगार के नए अवसरों का अभाव, गाँवों से लोगों का पलायन, कमरतोड़ महंगाई, घटती क्रयशक्ति, बुनियादी जरूरतों से वंचित देश की तीन चौथाई जनता करोड़ों लोग भुखमरी एवं कुपोषण के शिकार तथा पेयजल समस्या से आज हमारा देश पीड़ित है। स्कूल जाने लायक आधे बच्चे स्कूल से बाहर हैं, बालिकाओं की स्थिति और अधिक खराब है। एक अनुमान के अनुसार छह करोड़ से अधिक बाल मज़दूर हैं। अभी भी मलेरिया, डायरिया जैसी बीमारियों का व्यापक प्रकोप हमारी आबादियों को ग्रसित करता रहता है।
- समाज जीवन के अनेक महत्वपूर्ण क्षेत्रों में अधूरे प्रयासों एवं गलत दिशा के कारण आम लोगों में हताशा, कुंठा एवं टूटन बढ़ी है। देश की अपार प्राकृतिक संपदा गलत सरकारी नीतियों के कारण जन–हित में इस्तेमाल नहीं हो सकी है। विदेशी कर्ज के दुष्चक्र में देश बुरी तरह फँस गया है।
- स्वातंत्र्योत्तर भारत की सरकारों ने अपनी जड़ों को खोजने एवं सींचने के बदले ब्रिटिश–शासन द्वारा आरोपित ढाँचे को मजबूत एवं विस्तृत बनाने की गलत भूमिका निभायी।
- 1997, आज़ादी का यह 50वाँ वर्ष, व्यापक–समीक्षा एवं आगे की सही योजना के अनुसंधान का उचित अवसर है।

1.4 स्वदेशी राष्ट्रीय बहस का मुद्दा बना है। देश के अधिकांश लोग आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक जीवन में तेजी से बढ़ते विदेशी अतिक्रमण के खिलाफ़ सचेत एवं एकजुट हो रहे हैं। समाज के कमजोर घटक, जैसे महिलाएँ, कारीगर, छोटे किसान एवं मजदूर तथा जन–जाति समाज आदि वैश्वीकरण से प्रेरित नीतियों की मार से विशेष रूप से त्रस्त हैं।

- स्वदेशी किसी भी समाज के विकास का स्वाभाविक एवं वैज्ञानिक मार्ग है। अपने विशिष्ट सामाजिक परिवेश तथा जीवन दृष्टि के आधार पर ही व्यक्ति एवं समाज का विकास होता है। आज का जागतिक घटनाचक्र एवं अपने देश में उत्पन्न समस्याएँ भी स्वदेशी संरचना की आवश्यकता प्रतिपादित कर रहे हैं।
- स्वदेशी संकल्पना कोई स्वप्निल कल्पना की बात नहीं है, यह आज भी विद्यमान वास्तविकता है। पिछले कई दशकों से लगातार निवेश एवं नीतिगत प्राथमिकताओं के बावजूद आधुनिक संगठित ढाँचे की तुलना में परंपरागत अर्थव्यवस्था का आज भारत में तीन–चौथाई रोजगार, राष्ट्रीय सकल उत्पाद में 70 प्रतिशत तथा निर्यात–व्यापार में 75 प्रतिशत योगदान है। एक अध्ययन के अनुसार भारत के उद्यमियों में 60 प्रतिशत से अधिक लोग परंपरागत

समुदायों से आ रहे हैं, न कि आधुनिक प्रबंधन संस्थानों से; इसके विपरीत आई.आई.टी. और आई.आई.एम. के स्नातक बड़ी संख्या में विदेशी नियोजकों की सेवा में लग जाते हैं। पिछले 6 वर्ष में राष्ट्रीय बचत 11,30,029 करोड़ की तुलना में विदेशी पूँजी निवेश मात्र 18,418 करोड़ अर्थात् केवल 1.6 प्रतिशत था। अभी तक घरेलू बचत ही निवेश का मुख्य आधार रही है।

- दर्शन के रूप में, अपनी समाज परंपरा की पुरातन संकल्पनाओं – स्वधर्म, स्वराष्ट्र, स्वावलंबन और स्वराज्य का समन्वित रूप ही स्वदेशी है। भारतीय सभ्यता के एकात्म रूप के नाते ही स्वदेशी को महात्मा गांधी ने विदेशी आधिपत्य के खिलाफ भारत के पुनर्जागरण का एक मुख्य आधार–स्तंभ माना था। उन्होंने राष्ट्र जीवन के सामाजिक–आर्थिक–सांस्कृतिक सभी पहलुओं के बीच अविभाज्य समरसता के रूप में स्वदेशी को अनुभव किया था। स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविन्द, लोकमान्य तिलक, सुब्रमण्यम भारती, वी.ओ. चिदंबरम और डॉ. जगदीश चंद्र बोस, महेंद्र लाल सरकार, पी.सी. राय, सी.वी. रमन आदि वैज्ञानिकों की उज्ज्वल परंपरा की एक शानदार कड़ी के रूप में महात्मा गांधी सामने आए और भारत के स्वाधीनता आंदोलन के एकात्म अंग के रूप में स्वदेशी को प्रमुखता दी।
- स्वातंत्र्योत्तर भारत में भी, सत्ता–प्रतिष्ठान के बाहर, गांधीवादी रचनात्मक संस्थाओं तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और इससे जुड़े जन संगठनों और विनोबा, जयप्रकाश नारायण, श्री गुरुजी व दीनदयाल उपाध्याय जैसे महानुभावों के माध्यम से यह परंपरा जारी रही। इस कड़ी में, आपस में हर बिंदु पर आपसी सहमति नहीं रही होगी, लेकिन सभी ने स्वदेशी संकल्पना के बुनियादी पहलुओं पर जोर दिया। इन संस्थाओं और महानुभावों ने स्वदेशी की मशाल को लगातार प्रज्ज्वलित रखा।
- स्वदेशी एक गतिमान प्रवाह के रूप में है जिसमें सातत्य और परिवर्तन दोनों है। स्वदेशी में विदेशी साम्राज्यवाद के विरुद्ध प्रतिकार तो है ही, इसी के साथ–साथ 'राष्ट्र के पुनर्निर्माण का दर्शन' भी इसमें समाविष्ट है, जिसके अंतर्गत यह राष्ट्र अपनी चिति के अनुरूप अपने मौलिक तौर–तरीकों की खोज और परिष्कार करते हुए तथा अपने लिए उपयोगी विश्व–ज्ञान–भंडार को समुचित व संशोधित रूप में साथ लेकर विश्व–मंच पर योग्य भूमिका संपादित करे।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि के संदर्भ में यह प्रारूप विकास की सही दिशा के लिए चिंतन का एक प्रयास है। यह प्रयास मूलतः हमारी दृष्टि एवं कार्य की दिशा को स्पष्ट करता है। हर क्षेत्र में सभी स्तरों पर क्या हो? इसका यह संदर्श या ब्लू-प्रिंट नहीं है। यह भी स्पष्ट करना उचित होगा कि इस प्रारूप में समग्र

दृष्टि के आधार पर आर्थिक विकास से जुड़े मुद्दों पर ही अधिक चर्चा की गई है। हर क्षेत्र के आवश्यक पहलुओं को समझते एवं उनके पारस्परिक अंतर्क्रिया को ध्यान में रखते हुए जानकार, प्रयोगशील लोग अपना अनुभवजन्य विचार समाज के सामने रखें, ऐसा प्रयास इस चिंतन प्रक्रिया की अगली कड़ी होगी।

2. भारतीय जीवन दृष्टि – स्वदेशी संकल्पना

2.1 प्रत्येक समाज अपनी जीवन–दृष्टि एवं जन–आकांक्षाओं के अनुरूप निरंतर प्रगति की राह पर आगे बढ़ना चाहता है। यह मानव समाज की स्वाभाविक चाह है, यह प्रवृत्ति उसके जीवंतता का प्रतीक है। इस दिशा में मनुष्य सतत् प्रयत्नशील रहा है। यही चाह और प्रयास आदि सभ्यता से लेकर आधुनिक काल तक अनगिनत खोज और आविष्कारों के जनक हैं। न्यूनतम आवश्यकताओं से आगे बढ़ कर संपन्नता और सुख–सुविधाओं की दौड़ और होड़ भी इसी चाह का विस्तार हैं।

2.2 मानव समाज/सभ्यता की विकास–यात्रा के इस इतिहास–प्रवाह में असंतुलन और गड़बड़ी उस समय उत्पन्न हुई जब सृष्टि के कुछ भागों में मनुष्य ने अपने पड़ोसियों, परिवेश और प्रकृति से परस्पर–पूरक एवं अंतरंग रिश्तों की उपेक्षा करते हुए स्वयं को ही केंद्र बिंदु मान लिया। इस मानस ने ब्रह्मांड को एक संयंत्र या मशीन मान लिया और शोषण–व्यवस्था के लिए दार्शनिक औचित्य प्रदान कर दिया। यांत्रिक विश्व–दृष्टि ने मानव समाज में भयंकर शोषण, विषमता और विघटन को जन्म दिया।

- इस विचारधारा में से ही पश्चिम के क्षितिज पर पूँजीवादी व्यवस्था और औद्योगिक समाज का उदय हुआ। ऐतिहासिक तथ्य यह सिद्ध करते हैं कि पश्चिम के देशों द्वारा एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमरीका के बड़े क्षेत्रों पर लंबे समय तक साम्राज्यवादी आधिपत्य एवं भयंकर शोषण के कारण ही औद्योगिक क्रांति साकार हुई।
- उन्नीसवीं सदी के प्रमुख विचारक कार्लमार्क्स भी इस यांत्रिक विश्व–दृष्टि के मूलभूत तर्कों से अभिभूत थे। मार्क्स ने अपने सिद्धांतों के निरूपण में यांत्रिक दृष्टिकोण, अवधारणाओं एवं शब्दावली का प्रयोग किया। इस कारण स्वाभाविक रूप से मार्क्सवाद भी अपनी मूल प्रस्थापनाओं में प्रकृति के शोषण को स्वीकारता है।
- पूँजीवादी और कम्युनिज्म दोनों के एक से ही प्रतिमान है। ये मूलतः उपभोगवादी हैं, मतभेद केवल साधनों के स्वामित्व के बारे में है। दोनों का पर्यावरण का शोषण अभिप्रेत है। परिणामतः वैयक्तिक–सामाजिक – पर्यावरणीय सभी स्तरों पर जटिल समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

2.3 मानव जाति के सामने आज गंभीर समस्या यह है कि क्या वह पाश्चात्य सभ्यता के बढ़ते हुए कदमों को रोककर व्यक्ति को आत्मप्रतिष्ठा और समाज के संतुलित विकास का समन्वय कर सकता है? क्या हम कोई ऐसा प्रारूप प्रस्तुत कर सकते हैं, जो व्यक्ति और उसके सामाजिक व प्राकृतिक परिवेश के बीच एक सुदृढ़ और शाश्वत संबंध स्थापित कर सके।

2.4 सभ्यता की पहली किरण से ही हिंदू मानस ने जीव और जगत की वास्तविक प्रकृति और उनके अन्तर्सम्बंधों का गहन चिंतन किया है। प्राचीन भारतीय मनीषा ने ब्रह्मांड की आधारभूत व अखंड एकात्मता का साक्षात्कार किया है। इस सत्य का असंदिग्ध उद्घोष भारतीय वाङ्मय में मिलता है।

- यही एकात्म विश्व दृष्टि, शोषणमुक्त एवं समरसतायुक्त सामाजिक–आर्थिक संरचना खड़ी करने के लिए सही विकल्प प्रस्तुत कर सकती है। एकात्मचिंतन के अनुसार व्यक्ति 'सामाजिक संयंत्र का कल –पुर्जा नहीं, वरन् मानव समाज का प्रतिनिधि है, जो निरंतर एक दूसरे पर तथा प्रकृति के साथ परस्पर क्रियाशील एवं प्रभावरत रहता है। इस प्रकार व्यक्ति तथा समाज के बीच संबंध जैविक तथा परस्पर पोषक होते हैं। इस अभिकल्पना पर आधारित सामाजिक – आर्थिक व्यवस्थाएँ स्वाभाविक रूप से लोकतंत्रीय, विकेंद्रित एवं शोषणरहित होती है। एकात्मदृष्टि अथवा समग्र जीवनदृष्टि ही व्यक्ति के संतुलित विकास की राह प्रशस्त करती है।

- **सारांश रूप में,** विकास के बुनियादी संकल्पना के दो प्रमुख विचार प्रवाह हैं :

  (क) उपभोग को ही लक्ष्य मानने वाला विचार प्रवाह,

  (ख) उपभोग को साधन मानकर समग्र विकास को लक्ष्य मानने वाला विचार प्रवाहं।

2.5 ● हमारी दृष्टि में शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा सभी के संतुलित विकास को महत्व हैं। यही एकात्म जीवन दर्शन भी है। इस जीवन दर्शन की कतिपय विशेषताओं को निम्न प्रकार बिंदुबद्ध किया जा सकता है :

(i) पुरुषार्थ चतुष्टय – धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

(ii) यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः।

(iii) व्यक्ति के विकास में परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्व का कल्याण भी निहित।

(iv) अखंड मंडलाकार जीवन रचना।

(v) 'सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' सर्वोदय–विचार।

(vi) प्रकृति के साथ अंगांगी भाव। इसलिए शोषण नहीं, दोहन।

(vii) बिबिधता में एकता का दर्शन।

(viii) अर्थ का न अभाव, न प्रभाव। संतुष्टि एवं संयम दोनों।

(ix) योगः कर्मसु कौशलम्। श्रम की प्रतिष्ठा। इस तत्वज्ञान को जीवन में उतारने का आग्रह।

(x) ऋणमुक्ति के आधार पर कर्त्तव्यबोध।

2.6 स्वदेशी का संस्थात्मक आधार-ढाँचा

जहाँ एक ओर पूँजीवादी ढाँचे में सामाजिक–आर्थिक वितरण व्यवस्था पूरी तरह राज्य और बाजार पर निर्भर है और समाजवादी ढाँचा मूलतः राज्यसत्ता पर ही निर्भर है, स्वदेशी संरचना में राज्य व बाजार के साथ–साथ सामाजिक संस्थागत व्यवस्थाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। स्वदेशी मान्यताओं में बाजार व राज्यसत्ता के साथ ही परिवार, समुदाय व समाज की सार्वजनिक भूमिका है।

(क) **परिवार :** स्वदेशी दृष्टिकोण में समाज व्यवस्था की आधारभूत सामाजिक–सांस्कृतिक–आर्थिक इकाई, व्यक्ति नहीं परिवार है। यह एकमेव संस्था आधुनिक राज्यतंत्र को उन असाधारण सामाजिक कल्याण प्रतिबद्धताओं से मुक्त कर देती है, जिन पर अमरीका व जर्मनी जैसे पश्चिमी देशों में सकल राष्ट्रीय घरेलू उत्पाद का आधा से अधिक खर्च होता है, जैसे वृद्धावस्था कल्याण और बेरोजगारी भत्ता आदि।

(ख) **समुदाय, समाज :** स्वदेशी दृष्टि में विभिन्न सामाजिक इकाइयों का अपना विशिष्ट महत्व है। इस दृष्टि के अनुसार अनियंत्रित और असंतुलित व्यक्तिवाद से समाज व्यवस्था को खतरा है। इतना ही नहीं, व्यक्ति को अपने मुक्त विकास, सृजनात्मक अभिव्यक्ति और क्रमिक विस्तार के लिए परस्पर–पूरक व अंतर्क्रियात्मक समुदाय की अपरिहार्य आवश्यकता है।

(ग) **परिवार, समाज और व्यक्ति का संतुलन-पंथ :** वैयक्तिक स्वतंत्रता की पाश्चात्य अवधारणा जो परिवार, अर्थतंत्र, संस्कृति और सामाजिक मूल्यों को अलग–अलग टुकड़ों में बाँटकर देखती है, यह स्वदेशी दृष्टिकोण को अमान्य है। व्यक्ति का परिवार और समाज से एकात्म जुड़ाव होने से वैयक्तिक स्वतंत्रता की मर्यादाएँ स्वयंमेव आ जाती हैं। राज्यसत्ता की भूमिका मात्र अतिक्रमण से सुरक्षा प्रदान करना है, पूरी संरचना को आधार प्रदान करना यह धर्म की भूमिका है। समुदाय की अपनी व्यवस्था को सहायता एवं जुड़ाव देने में पंथ की सकारात्मक भूमिका है।

(घ) **बाजार की भूमिका :** बाजार के वैश्वीकरण की पश्चिमी अवधारणा स्वदेशी दृष्टि से मेल नहीं खाती। बाजार लोक के लिए एक अस्त्र मात्र है, मालिक नहीं। इस अस्त्र को जितना छोटा रखा जाए, उतना बेहतर होगा। स्वदेशी मान्यता में बाजार के आकार को सीमित रखना है, कम्युनिज्म की तरह बाजार को

समाप्त करना नहीं। स्वदेशी की विश्व–कल्पना में एक वैश्विक बाजार नहीं है अपितु 'एक नहीं, हजारों बाजार फलें–फूलें' – यह हमारी दृष्टि है।

(ङ) **राज्य की भूमिका :** स्वदेशी अवधारणा में राज्यतंत्र का प्राथमिक दायित्व है राष्ट्र की सुरक्षा और राष्ट्रीय हितों की देखभाल करना। राष्ट्र के आंतरिक मामलों में उसे पूरक भूमिका निभानी चाहिए। महाभारत के शांतिपर्व में भीष्म के कथन के अनुसार 'राज्य की भूमिका है दुर्बलों की रक्षा करना और यह सुनिश्चित करना कि धर्म का अनुपालन हो तथा यह भी कि राष्ट्र की संपत्ति और सम्मान की रक्षा हो। सामान्य रूप से राज्य को व्यापार नहीं करना चाहिए, यह सुनिश्चित करना चाहिए कि व्यापार व वाणिज्य धर्म व्यवस्था के अनुरूप हो, इसका मात्र अपवाद होगा विदेशी अतिक्रमण से राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा'।

(च) **व्यक्ति, परिवार, समुदाय, समाज, बाजार और राज्य के संबंध :** स्वदेशी दृष्टिकोण में व्यक्ति, राज्य, बाजार और परिवार, समुदाय, समाज व पंथ ये सभी घटक अपने–अपने व्यवहार व्यवस्थाओं में वैयक्तिक और सामूहिक जीवन के समग्र व एकात्म लक्ष्यों से सुसंबद्ध हैं जिसका नाम है – पुरुषार्थ। स्वदेशी संकल्पना में ये सभी घटक संस्थाएँ, सामाजिक–आर्थिक और अन्य उद्देश्यों के लिए व्यवहार तंत्र हैं।

2.7 धर्माधिष्ठित समाज रचना

व्यापक अर्थ में 'धर्म' वही है जो जीवन के सभी पक्षों, पूरे समाज एवं संपूर्ण विश्व का पोषण करता है तथा अंततः सभी व्यवस्थाओं का नियामक है। किसी प्रसंग–विशेष में सामाजिक आचरण विशेष के औचित्य का निर्धारण आंतरिक विधान धर्म द्वारा होता है। उदाहरणार्थ : महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित नैतिक आचार – एकादश व्रत – सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, संतोष, स्वाध्याय, तप, क्षमा तथा स्वदेशी।

2.8 हमारी दृष्टि में शोषणमुक्त, समरसतायुक्त, स्वायत्त, समृद्ध, संयमशील और सजग समाज ही विकसित समाज का आदर्श रूप है और इस स्थिति की ओर लगातार बढ़ने का प्रयास करना, यही मानव–समाज की विकास यात्रा है।

- स्वामी विवेकानंद, श्री अरविन्द, महात्मा गांधी, श्री गुरुजी जैसे राष्ट्रीय मनीषियों ने शाश्वत मूल्यों के आलोक में युगधर्म को प्रतिपादित किया है। इसी पथ पर आगे बढ़ना है।

3. राष्ट्रीय लक्ष्य

3.1 (i) एकात्म एवं समग्र जीवनदृष्टि पर आधारित न्यायपूर्ण विश्व–व्यवस्था के सृजन में योगदान।

(ii) राष्ट्रीय सुरक्षा, एकता एवं अखंडता को सुनिश्चित करना।

(iii) आत्मनिर्भर राष्ट्र का निर्माण।

(iv) भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का पोषण।

(v) प्राकृतिक संपदा का संरक्षण।

(vi) देश के सभी क्षेत्रों एवं पूरे समाज का संतुलित विकास।

3.2 उपर्युक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए निम्न उद्देश्यों को पूरा करना होगा —

(i) देश के सभी लोगों की बुनियादी आवश्यकताएँ पूरी हों, यह आगामी 10 वर्षों की अवधि में सुनिश्चित करना। भोजन, कपड़ा, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, ऊर्जा तथा आवागमन की सुविधाएँ, लोगों की बुनियादी जरूरतें हैं।

(ii) सार्थक व उत्पादक कामों में संलग्नता ही न्यूनतम आवश्यकताओं की प्राप्ति की एकमेव गारंटी है अतः सभी सक्षम हाथों को समुचित रोजगार सुनिश्चित करना राष्ट्रीय नियोजन का प्रथम उद्देश्य है। आगामी एक दशक में इस उद्देश्य की पूर्ति सुनिश्चित करना।

(iii) भारत को आर्थिक दृष्टि से अगले 25 वर्षों में विश्व की एक शक्ति के रूप में खड़ा करना।

(iv) यह सुनिश्चित करना कि आय का अंतर उचित सीमा के भीतर रहे, इस हेतु देश के ऊपरी 20 प्रतिशत और नीचे के 20 प्रतिशत लोगों की आय में 10 : 1 की सीमा रहे।

(v) राष्ट्रीय स्वाभिमान और आत्म–विश्वास को प्रोत्साहित करना, इस हेतु शिक्षा, खेलकूद, संचार माध्यमों एवं सार्वजनिक व्यवहार में गुणात्मक परिवर्तन लाना।

हमारा विश्वास है कि राष्ट्रीय संकल्प और एक जुट प्रयासों से ये लक्ष्य और उद्देश्य अवश्य ही प्राप्त होंगे। इस हेतु भारतीय जीवन दृष्टि ही सर्वोत्तम मार्ग है।

3.3 **स्वदेशी का तात्पर्य है राष्ट्रीय समृद्धि और शक्ति का अर्जन :** एक गलत धारणा बनी है कि स्वदेशी दर्शन में संयम और सादगी पर अत्यधिक आग्रह होने से यह संपदा–अर्जन के खिलाफ है। वास्तविकता यह है कि स्वदेशी विचार असीमित उपभोग के विरुद्ध है, राष्ट्रीय समृद्धि और प्राकृतिक संपदा के संरक्षण के लिए प्रेरणा देता है, व्यक्तिगत और पारिवारिक स्तर पर बचत और संयम के लिए प्रेरित करता है और व्यर्थ एवं अनावश्यक खर्चों को हतोत्साह भी करता है। स्वदेशी परंपरा ने ही भारत को विश्व के सर्वाधिक वैभवशाली संपन्न राष्ट्रों की पंक्ति में खड़ा कर दिया था, इसी संपन्नता ने कोलंबस, वास्कोडिगामा आदि को भारत की खोज के लिए आकृष्ट किया, इसी संपन्नता

के कारण भारत पर अनेक आक्रमण भी हुए। लेकिन भारत की यह संपन्नता सामाजिक और राष्ट्रीय संपदा के रूप में थी, केवल व्यक्तिगत संपत्ति के नाते नहीं। यहाँ की व्यवस्था में समाज में संपत्ति सम्मान का एकमेव या सबसे महत्वपूर्ण आधार कभी भी संपत्ति नहीं था। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत संपन्न था, लेकिन संपन्नता समाज व्यवहार का निर्णायक तत्व नहीं थी। अतः स्वदेशी दृष्टिकोण धन–संपदा विरोधी नहीं है, अपितु समृद्धि और शक्ति अर्जन के लिए प्रेरित करता है।

4. भारतीय अर्थतंत्र - शक्तियाँ और दुर्बलताएँ

4.1 राष्ट्रीय अर्थतंत्र के मूल्यांकन और गहन समीक्षा के लिए इसकी शक्तियों और दुर्बलताओं की बुनियादी कल्पना आवश्यक है।

4.2 **अर्थतंत्र के शक्ति-क्षेत्र :** राष्ट्र और समाज के नाते भारत की शक्ति के क्षेत्र इस प्रकार हैं :–

(i) भारत के पास खेती–योग्य मैदानी भूमि भरपूर है। चीन से क्षेत्रफल में आधा होने के बाद भी भारत के पास कृषि योग्य मैदानी भूमि चीन से 50 प्रतिशत अधिक है। यदि चीन का खाद्यान्न उत्पादन आज भारत से दुगुना है, तो भारत की प्राकृतिक क्षमता चीन से डेढ़ गुना पैदा करने की है। भारत की मैदानी भूमि अमरीका की तुलना में दुगुनी है, जबकि अमरीका का आकार भारत से दुगुना है। इसकी मिट्टी उर्वरा है और सूर्य का प्रकाश साल में 10 माह उपलब्ध है, इसलिए साल भर फसल पैदा हो सकती है — प्रकृति की यह भेंट न चीन के पास है और न ही पश्चिम के किसी देश को उपलब्ध है। विश्व में भारत के पास कृषि तकनीक की परंपरा सबसे पुरानी है और भूतकाल में उत्कृष्ट उत्पादकता के अनेक उदाहरण मौजूद हैं, विश्व में आज के सर्वश्रेष्ठ उत्पादन से भी बेहतर परंपरा भारत के किसानों में रही है।

(ii) भारत के पास अपनी परंपरागत और आधुनिक कुशल दक्ष जनशक्ति बड़े प्रमाण में है। भारत के कई क्षेत्रों की संपन्नता का आज मुख्य आधार हमारी परंपरागत कुशल जनशक्ति है, जैसे– लुधियाना, बटाला, राजकोट, जामनगर, तिरुपुर, शिवकाशी और इसी प्रकार के अन्य असंख्य केंद्र।

(iii) भारत के पास अपनी अपार जल–संपदा है। हम अपने जल–संसाधनों का मात्र 2.5 प्रतिशत ही अभी प्रयोग कर रहे हैं। भारत के पास निरंतर प्रवाहमान नदियाँ और मैदानी क्षेत्रों में सुसंगत परंपरागत जल प्रबंध व्यवस्था भी है।

(iv) भारत के लिए आंतरिक जल–परिवहन विकसित करने का पूरा अवसर

विद्यमान है। ब्रिटिश विशेषज्ञों द्वारा यह तथ्य प्रारंभ में ही समझ लेने के बावजूद यह काम उस समय आगे नहीं बढ़ा क्योंकि ब्रिटेन की रेलवे लॉबी के निजी हित इसके विपरीत थे। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी यह अभीतक प्रायः अप्रयुक्त है, जबकि यह सड़क परिवहन की तुलना में सस्ता भी है।

(v) भारत के पास अपना एक व्यापक औद्योगिक एवं वाणिज्यिक आधार ढाँचा है। अन्य कई समाजवादी देशों से भिन्न इसका अपनी वस्तुओं का बाजार ढाँचा सुव्यवस्थित है। अन्य पुराने समाजवादी देशों की तुलना में भारत के आधुनिक सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग पर्याप्त सक्षम हैं। कई क्षेत्रों में भारतीय सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र विश्व स्तर पर आगे बढ़ने की क्षमता रखते हैं।

(vi) आधुनिक कानूनी, लेखा, प्रबंधन, वित्तीय, बैंकिंग, विज्ञापन परामर्शीय, अभियांत्रिकी, साफ्टवेयर एवं इनसे संबंधित क्षेत्रों में भारत के पास विलक्षण व्यावसाविक एवं तकनीकी प्रतिभा विद्यमान है।

(vii) प्रौद्योगिकी, बैंकिंग, वित्त, व्यापार, उद्योग, विधि, लेखा, विज्ञापन एवं परामर्शीय क्षेत्रों में आधुनिक व पाश्चात्य परिस्थितियों में कुशल, दक्ष एवं अनुभवी और सफल प्रवासीय भारतीयों के बड़े व्यापक समूह से भारत का जीवंत जातीय जुड़ाव बना हुआ है।

(viii) भारत के पास वाणिज्य एवं व्यापार में प्रशिक्षित एक बड़ा व्यापारी समुदाय है। भारत के व्यापारियों की उद्यमी के नाते एक मजबूत सुस्थापित पृष्ठभूमि एवं परंपरा है। उन्होंने लंबे समय तक पूरे विश्व में अपनी श्रेष्ठता की मजबूत छाप बरकरार रखी है।

(ix) भारत के पास विश्व में सबसे बड़ी रेल व्यवस्था है। चीन से क्षेत्रफल में आधा होते हुए भी भारत की रेलवे चीन से दुगुना है।

(x) भारत की पारिवारिक एवं सामुदायिक तथा ग्राम एवं समाज पंचायत पद्धति और गहरी धार्मिक जन चेतना के कारण राज्यसत्ता को बहुत से प्रशासनिक एवं विधि व्यवस्था के कामों से मुक्ति मिलती है तथा जनकल्याण और पुलिस एवं व्यवस्था के भारी भरकम खर्च अन्य देशों की तरह नहीं करने पड़ते। न्याय के क्षेत्र में पश्चिम की वकीली व्यवस्था के स्थान पर परंपरागत पंचायती पद्धति एक सफल विकल्प है।

(xi) कुशलता एवं दक्षता अर्जित करने के लिए भारत की अपनी परंपरागत पद्धतियाँ आज भी व्यापक रूप से प्रचलित हैं और बड़े पैमाने पर कुशलताएँ प्रदान करने के लिए आम लोगों के बीच इन पद्धतियों को सफलतापूर्वक पुनर्जीवित किया जा सकता है।

(xii) शहरीकरण की अंधी दौड़ और जन–जीवन में बढ़ती विकृतियों को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि भारत की बड़ी ग्रामीण जनसंख्या शहरों की ओर पलायन न करे। समाधान का यह भी एक प्रभावी साधन है। इसके विपरीत पाश्चात्य दृष्टि में शहरीकरण ही आर्थिक विकास की मुख्य कसौटी है।

(xiii) भारतीय जीवनदृष्टि में सामान्यजन संरक्षण एवं संयम पर बल देता है। पुरानी चीजों की मरम्मत और उनका पुनर्प्रयोग सामान्यजन के स्वभाव में है, पश्चिम में तो इस्तेमाल करने लायक कारों को भी भारी दबाव से चपटा कर दिया जाता है।

(xiv) प्रकृति की ओर पवित्रता एवं पूजा का भाव भारतीय जनमानस में विद्यमान है। पर्यावरणीय चेतना पुनर्जाग्रत करने एवं प्राकृतिक संतुलन पुनः प्राप्त करने का यह सबसे सरल मार्ग है।

(xv) आरोग्य के प्रति भारतीय दृष्टि समग्रता की है, परंपरागत औषधीय व्यवस्था आज भी व्यापक रूप से प्रचलित है और देश की तीन चौथाई जनसंख्या से भी अधिक लोग आज इसी पर निर्भर है।

(xvi) वृद्धजनों एवं महिलाओं के प्रति सम्मान की परंपरा के कारण राज्य प्रशासन को विधि व्यवस्था के लिए बड़े पैमाने पर पुलिस स्टेशन नहीं बनाने पड़ते। पूरे देश के लगभग 7.5 लाख गाँवों के बीच केवल 50 हजार पुलिस स्टेशन हैं। इसी के साथ यह भी उल्लेखनीय है कि हमारे देश में वृद्धों के लिए कल्याण योजनाएँ लगभग नगण्य हैं।

भारत के सत्ता प्रतिष्ठान की पश्चिमी मानसिकता के कारण आज हम एक राष्ट्र के रूप में अपनी शक्ति के बिंदुओं के प्रति सचेत नहीं है, लेकिन वास्तविकता यही है कि अपने राष्ट्र के इन्हीं शक्ति बिंदुओं के कारण सन् 1800 में जब औद्योगिक क्रांति आधे रास्ते पर थी तब भारत का हिस्सा विश्व व्यापार में 18 प्रतिशत और औद्योगिक उत्पादन में 19 प्रतिशत था, उस समय विश्व व्यापार में ब्रिटेन का हिस्सा केवल 8 प्रतिशत और अमरीका का भाग 2 प्रतिशत था, औद्योगिक उत्पादन में ब्रिटेन का हिस्सा केवल 9 प्रतिशत और अमरीका का भाग 4 प्रतिशत था। सन् 1800 में भारत में साक्षरता 33 प्रतिशत थी जो उस समय पूरे विश्व में सर्वाधिक थी, उस समय साक्षरता का अर्थ आजकल की तरह केवल हस्ताक्षर कर देना मात्र नहीं था अपितु इसके अंतर्गत पढ़ने एवं लिखने दोनों की प्राथमिक योग्यता सम्मिलित थी। इसके विपरीत जब अंग्रेजों ने भारत छोड़ा, तो उस समय विश्व के औद्योगिक उत्पादन में भारत का हिस्सा मात्र 1 प्रतिशत था, यही हाल निर्यात का था और हमारी साक्षरता दर घटकर आधा यानी सत्रह प्रतिशत पर पहुँच गई, इसके बावजूद पश्चिमी मानसिक

दासता से ग्रस्त भारत के कुछ बुद्धिजीवी अभी भी अंग्रेजों का गुणगान करने में नहीं चूकते।

4.3 हमारी दुर्बलताएँ

उपर्युक्त असाधारण क्षमताओं के बावजूद, स्वातंत्र्योत्तर काल में भारत की उपलब्धियाँ संतोषजनक नहीं रही हैं। जिसके निम्नलिखित कारण हैं –

(i) एक राष्ट्र के नाते, हमें भारतीय विचारों और वस्तुओं के प्रति गर्व का भाव नहीं है, इसका मुख्यकारण है आज़ादी के बाद सत्ता द्वारा भारतीय विरासत को नकारना एवं पश्चिम की वाहवाही करना, पर वास्तविकता यही है कि हम पश्चिम को भी आत्मसात एवं स्वीकार नहीं कर पाए। सत्ता अधिष्ठान की इस प्रवृत्ति ने देश के प्रबुद्ध समाज के आत्मविश्वास को कमजोर किया, हमने पश्चिम की श्रेष्ठता के सम्मुख आत्म–समर्पण कर दिया क्योंकि देश की सत्ता न तो भारतीय थी और न ही पश्चिमी।

(ii) आज़ादी के बाद भारत के राजनैतिक नेतृत्व ने व्यापक राष्ट्रीय चेतना एवं राष्ट्रीय गर्व को प्रोत्साहन नहीं दिया, उल्टे यह हुआ कि देश के भीतर अपने विरोधियों को येनकेन प्रकारेण परास्त करने में लगे रहे। सत्ता व विपक्ष दोनों ही युधिष्ठिर के इस वचन को भूल गए – "वयं पंचाधिकम् शतम्"।

(iii) इसका परिणाम यह हुआ कि इस पुरातन देश का पुनर्निर्माण करने के लिए राष्ट्रीय आकांक्षा और संकल्प पैदा करने में एक राष्ट्र के नाते हम विफल हुए, वैयक्तिक एवं सामूहिक आत्म–विश्वास पैदा नहीं हो सका और हम विश्व रंगमंच पर अपेक्षित भूमिका का निर्वहन नहीं कर सके।

(iv) आज़ादी मिलने के बाद अंग्रेजी शिक्षित अभिजात्य वर्ग के भारतीयों ने मनोवैज्ञानिक रूप से अंग्रेजों का स्थान ले लिया, वे 'इंडिया' बन गए और शेष देश 'भारत' हो गया। भारत द्वारा 'इंडिया' का सम्मान किए जाने के बावजूद ये अंग्रेजी शिक्षित लोग स्वयं को पश्चिम की सीमाओं से मुक्त नहीं कर पाए और आत्म–विश्वास के साथ पश्चिम का सामना भी नहीं कर सके, यद्यपि इसी काम के लिए उनको दक्ष एवं विश्वस्त माना गया था।

(v) देश के नेताओं को अपने राष्ट्र को सशक्त बनाने से अधिक चिंता अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी मान्यता के लिए थी। राष्ट्र को हर कीमत पर सुदृढ़ बनाने की तुलना में उन्हें अधिक चिंता अपने वैचारिक मित्रों से गठबंधन पर थी।

(vi) परिवार, समुदाय एवं परंपरागत प्रतिभाओं की संस्थागत रूप में पूरी तरह उपेक्षा की गई।

(vii) कृषि, परंपरागत उद्योग–धंधे, जल–प्रबंधन की परंपरागत सामुदायिक पद्धतियों तथा अन्य प्रचलित तकनीकी, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं की सत्ता प्रतिष्ठान ने पूरी तरह उपेक्षा की। समाज एवं सत्ता के बीच एक गहरी खाई पैदा हो गई।

(viii) जनता द्वारा की गई राष्ट्रीय बचत को अनाप–सनाप सरकारी फिजूल खर्ची और गलत वित्तीय प्रबंधन द्वारा बर्बाद कर दिया गया। विशेषकर 1980 के बाद पिछले सत्रह वर्षों में कुल बजट घाटा लगभग 2,70,000 करोड़ तक पहुँच गया और बढ़ता सार्वजनिक कर्ज लगभग 10,00,000 करोड़ तक पहुँच गया परिणामतः अर्थतंत्र विदेशी ऋण के दुष्चक्र में फँस गया।

(ix) 1985 से आयात–निर्देशित अर्थव्यवस्था की नई नीति अपनाकर सरकार ने बहुत कठिनाई से अर्जित विदेशी मुद्राकोष जिसमें भारत के सामान्य नागरिकों द्वारा विदेशों में काम करते हुए प्रेषित 4,00,000 करोड़ डॉलर शामिल है, को लगभग समाप्त कर दिया और इससे देश विदेशी मुद्रा संकट की गंभीर स्थिति में 1990-91 में पहुँच गया। देश का सोना विदेशी बैंकों में गिरवी रखना हमारी सरकार के दिवालिए होने का शर्मनाक सबूत बना।

(x) 1970 से राजनैतिक एवं प्रशासनिक भ्रष्टाचार निरंतर बढ़ते हुए चरम सीमा पर पहुँचा इससे भारतीय अर्थव्यवस्था बुरी तरह प्रभावित हुई।

संक्षेप में अक्षम नेतृत्व एवं गलत आर्थिक एवं प्रशासनिक नीतियों ने भारत को आज़ादी मिलने के बाद सफल प्रदर्शन से वंचित कर दिया।

5. वर्तमान चुनौतियाँ

पिछले दशकों में अपना देश कुछ दृष्टि से आगे बढ़ा है, परंतु अनेक समस्याएँ विकराल चुनौतियों के रूप में मुँह बाए खड़ी हैं।

5.1 आज असल चुनौती मूलतः पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध में सरकार और सामान्य जन के भटकाव के खतरे की है। तथाकथित विकसित देश अपने स्वभाव एवं आंतरिक विवशताओं के कारण योजनाबद्ध तरीके से संपूर्ण दुनिया को दबोच लेना चाहते हैं।

5.2 निरंतर बढ़ती विषमता, बड़े पैमाने पर बेरोज़गारी, बढती ग़रीबी–भुखमरी–कुपोषण, लगातार बढ़ती कीमतें, शिक्षा एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र में दुरावस्था, पर्यावरण ह्रास, बढ़ती जनसंख्या, हिंसक प्रवृतियाँ, मादक द्रव्य, संगठित अपराध, आतंकवाद और सबसे बढ़कर हताश, कुंठित, अलग–थलग एवं अपनी जड़ों से कटता हुआ समाज – ये सब आज देश के सम्मुख जटिल चुनौती के रूप में खड़े हैं।

5.3 हर क्षेत्र में केंद्रीयकरण एवं सरकार का हस्तक्षेप बढ़ रहा है। राजनैतिक एवं प्रशासनिक भ्रष्टाचार अपने चरम सीमा पर है। काला धन बढ़ रहा है। सार्वजनिक धन का दुरुपयोग आम बात हो गयी है।

(i) अंधाधुंध बढ़ता शहरीकरण और उससे उत्पन्न विसंगतियाँ एक चुनौती है।

(ii) कृषि का समवायीकरण (Corporatisation) एवं कृषि पर बढ़ता दबाव।

(iii) विकास क्षेत्र में बढ़ता क्षेत्रीय असंतुलन।

5.4 बहुराष्ट्रीय कंपनियों का उपभोक्ता क्षेत्रों में अंधाधुंध प्रवेश से हमारे रोज़गार छिन रहा है। परंपरागत कारीगर समूह दबाव में हैं।

(i) व्यापक चौतरफा सांस्कृतिक आक्रमण। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, विज्ञापन एजेन्सियाँ, शिक्षा क्षेत्र में विदेशी शिक्षण संस्थाओं/प्रणालियों का प्रवेश। फलतः विदेशी मानसिकता को बढ़ावा।

(ii) गैट में प्रस्तावित नए बौद्धिक संपदा अधिकार के कारण भारतीय उद्योगों, अनुसंधान एवं शोधकार्यों, कृषि क्षेत्र सेवा–क्षेत्र एवं अन्य जैविक संपदा पर मंडराता संकट। प्रस्तावित MAI (मल्टीलेट्रल एग्रीमेंट ऑन इन्वेस्टमेंट) से प्रभुसत्ता का संकट।

5.5 विदेशी एवं आंतरिक कर्ज़ों का बेतहाशा बढ़ना।

(i) बढ़ता व्यापार घाटा। भुगतान–असंतुलन।

(ii) हानिकारक निर्यात – खनिज अयस्क (बेलाडिला का लौह अयस्क), मांस, खाद्य तेलों की खली एवं अन्य बहुत से कच्चे माल।

(iii) हानिकारक आयात – पेट्रोलियम पदार्थों का अंधाधुंध बढ़ता उपभोग, विलासिता सामग्री, प्लास्टिक एवं अन्य विषैले कचरे।

5.6 ऊर्जा क्षेत्र में बढ़ता संकट, महँगी ऊर्जा।

5.7 विकास के लिए आवश्यक आधार भूत ढाँचे के निर्माण से सरकार पीछे हट रही है।

5.8 मौजूदा परिस्थितियों में चिंता और चुनौती की दो महत्वपूर्ण बातें :–

(क) सरकार एवं समाज की कमजोर पड़ रही इच्छाशक्ति।

(ख) सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व के प्रति विश्वसनीयता का संकट।

6. प्राथमिकताएँ

6.1 आमजन की बुनियादी आवश्यकताएँ एवं अंत्योदय।

(i) बुनियादी आवश्यकताएँ : भोजन एवं पेयजल, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य, शिक्षा, ऊर्जा एवं आवागमन।

(ii) अंत्योदय : समाज के उपेक्षित पीड़ित वर्गो को विशेष अवसर प्रदान करते हुए समरसता पर आधारित एकात्म समाज की रचना।

(iii) विषमता के विकृत रूपों पर प्रहार।

(iv) जन–जाति समाज हमारी समाज परम्परा की एक विशिष्टधारा है। इस धारा का समुचित पोषण। जंगलों का संरक्षण।

6.2 प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन में स्थानीय समुदाय का सहभाग, पहल, जबाबदेही, ट्रस्टी।

- प्रथमतः जल–प्रबंधन ग्राम सभा द्वारा नियोजित हो।
- कृषि, वन एवं जल एवं मत्स्य पालन जैसे क्षेत्रों में ग्राम समाज की निर्णायक भूमिका एवं नियंत्रण।
- जोत की क्षमता को ध्यान में रखकर जमीन का बँटवारा न्यायपूर्ण ढंग से हो। वनभूमि एवं राजस्व भूमि की सामुदायिक व्यवस्था पर जोर, समवायीकरण (Corporatisation) नहीं।
- विस्थापन के अबाधित अधिकार की समाप्ति तथा बड़े प्रकल्पों में विस्थापन से पूर्व पुनर्वास पैकेज पर अमल।
- खनिज–उत्खनन एवं उन पर आधारित उद्योगों में स्थानीय समाज का हिस्सा।

6.3 स्वशासन व्यवस्था को सुसंगत एवं सुदृढ़ बनाना।

(i) मौजूदा पंचायती राज व्यवस्था की विसंगतियों पर राष्ट्रीय बहस।

(ii) ग्रामीण/शहरी क्षेत्रों में स्थानीय निकायों के माध्यम से कुल राजस्व के अधिकाधिक योजना–व्यय का प्रावधान।

(iii) ग्राम सभा से लेकर संसद तक जन सहभागिता वाले प्रशासन तंत्र को विकसित करना।

6.4 **भारत का सुदृढ़ औद्योगीकरण** जिसमें राष्ट्र की प्राथमिकताओं के अनुरूप छोटे–बड़े उद्योगों का व्यापक जाल पूरे देश में होगा।

6.5 **कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र के विकास के लिए आवश्यक आधारभूत ढाँचे का विस्तार।** सिचाई को सर्वोच्च प्राथमिकता।

6.6 राष्ट्रीय लक्ष्यों एवं आज की वैश्विक परिस्थिति को दृष्टि में रखते हुए **सुदृढ़ राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए समुचित प्रावधान।**

7. वैश्वीकरण और स्वदेशी रणनीति

7.1 तात्कालिक दृष्टि से एवं निकट भविष्य की ओर देखते हुए, वैश्वीकरण की प्रक्रिया का सामना करना होगा, क्योंकि इसे नज़रअंदाज करना संभव नहीं है।

वैश्वीकरण के इस दौर में जब हर देश दूसरे देश के बाजारों और पूँजी के पीछे पड़ा है, दुनिया के हर देश पर यह दबाव आया है कि दूसरे देश के नागरिकों एवं निगमों को आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान करें। विश्व व्यापार संगठन का तंत्र राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्थाओं को वैश्वीकृत करने के व्यापक प्रयास को प्रतिबिंबित करता है। वैश्वीकरण का विरोध करने की इच्छा रखने वाले देशों को भी वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया का सामना करना होगा। यह निश्चित है कि विभिन्न राष्ट्रों की आर्थिक प्रगति कुछ अंतरराष्ट्रीय सिद्धांतों में बाँधकर होना संभव नहीं है, यह प्रगति उनके अपने प्रयासों एवं अपनी योजना के आधार पर ही होगी। यहाँ तक कि विश्व व्यापार संगठन की राष्ट्र व्यवस्था के माध्यम से ही कार्य करेगा। विश्व व्यापार संगठन किस सीमा तक प्रभावी होगा तथा यह सफल होगा या असफल, इन बातों पर भविष्यवाणी करना कठिन है। लेकिन अंतरराष्ट्रीय जगत के अभी तक अनुभवों को ध्यान में लेते हुए, अनेक तरह के दबाव, खिंचाव एवं अंतर्विरोधी शक्तियों की सक्रियता को देखकर ऐसा नहीं लगता कि इस प्रकार के तंत्र विश्व रंगमंच पर स्थायी भूमिका में रहेंगे। इसके बावजूद आज की परिस्थिति में विश्व व्यापार संगठन हमारे सम्मुख मौजूद है। इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता, इसके खिलाफ लड़ना होगा और बदल लाना होगा। कई राष्ट्रों की दृष्टि में विश्व व्यापार संगठन वैचारिक एवं व्यावहारिक दोनों ही दृष्टि से गलत संकल्पना है, लेकिन इस संगठन को मोड़ने या तोड़ने के लिए इससे असहमत देशों को एकजुट होने में कुछ समय लग सकता है। विश्व व्यापार संगठन के खिलाफ एक बड़े पैमाने पर व्यापक उभार की जरूरत है। यह अपने आप में वैश्वीकरण का प्रतिकार करने के लिए एक सतत्, संवर्ती एवं समान कार्यक्रम होगा।

7.2 अंतरराष्ट्रीय व्यापार एक युद्ध के समान; तद्नुरूप व्यूह रचना आवश्यक

- यह समझना आवश्यक है कि विश्व वाणिज्य ने आजकल युद्ध का स्वरूप ले लिया है, एक युद्ध से कुछ भी कम नहीं। वर्तमान में यह बाजार, उत्पाद और पूँजी की प्रतियोगिता का भाग नहीं है। यह एक सामाजिक, राजनैतिक–आर्थिक–सांस्कृतिक सत्ता का खेल है। यह युद्ध और शक्ति का खेल है। किसी भी युद्ध के समान छल–कपट इसमें भी होता है। दार्शनिक शब्दावली में, यह असंयमित लोभ और मोह माया को महिमामंडित एवं वैध बनाता है। भारत ऐसे मूल्यों का पालन करने में अमरीका की नकल नहीं कर सकता, लेकिन भारत को भी ऐसे प्रचलित मूल्यों का सामना तो करना ही होगा। अपनी आंतरिक विवशताओं और बाहरी शक्तियों के दबाव में आकर वैश्वीकरण की दौड़ में खिंचने के बाद भारत ने इस दिशा में अभी तक अपनी कोई व्यूह रचना नहीं बनाई है। पिछले छह वर्षों से व्यापक उदारीकरण और काफी हद तक वैश्वीकरण के बाद भी भारत ने वैश्वीकरण की चुनौती का

सामना करने के लिए अभी तक कोई रणनीति नहीं बनाई है। अतः राष्ट्रीय हितों के प्रति सजग कुछ प्रबुद्धजनों का अब यह दायित्व है कि आपस में मिल–जुलकर इस चुनौती का सामना करने के लिए एक अल्पकालिक और मध्यकालिक रणनीति तैयार करें।

7.3 अंतरराष्ट्रीय रणनीति के खिलाफ राष्ट्रीय व्यूह रचना

- वैश्वीकरण की चुनौती का सामना करने के लिए एक आक्रामक सह–सुरक्षात्मक तथा एक अल्पकालिक–सह–मध्यमकालिक व्यूह रचना बनाने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। इसका औचित्य स्पष्ट है। वैश्वीकरण के वर्तमान दौर के समर्थकों द्वारा इसे उपयोगी और अपरिहार्य घोषित किए जाने का हर स्तर पर सामना होना चाहिए। इसके बारे में कोई दो मत नहीं है। हर एक देश यह कर रहा है। विश्व व्यापार संगठन के प्रथम अध्यक्ष ने कहा था कि अब व्यापार युद्ध बढ़ेगे, घटेंगे नहीं, क्योंकि बहूदेशीय समझौतों में हर देश अपने बाजार को बचाने और दूसरों का बाजार छीनने के लिए हर कदम पर संघर्ष करेंगे। एक राष्ट्र के नाते भारत को एक सफल लड़ाई लड़नी होगी। देश को मनोवैज्ञानिक और राजनैतिक रूप से इस व्यापार युद्ध के लिए तैयार होना होगा। इस कार्य के लिए राष्ट्रीय तैयारी हेतु, कुछ सुझाव इस प्रकार हैं :–

(i) वैश्वीकरण की व्यापकता और सीमाओं के बारे में देश के राजनीतिक दलों एवं नेताओं, सामाजिक संगठनों, प्रशासन तंत्र, विशेषज्ञों, व्यापार जगत एवं अन्य संबंधित समूहों के बीच एक व्यापक राष्ट्रीय आम सहमति बनानी होगी ताकि महत्वपूर्ण क्षेत्रों के बारे में आपस में कोई विशेष मत भिन्नता न रहे।

(ii) वैश्वीकरण के पक्षधरों के बढ़ते कदमों को हर कदम पर रोकने के लिए अपने मौलिक देशी तरीकों का प्रयोग करना होगा।

(iii) वैश्वीकरण के बारे में सरकार उद्योग, श्रम संगठन के समन्वय से एक सही रणनीति बनानी होगी और इसके लिए एक समुचित तंत्र विकसित करना होगा।

(iv) विदेशी आधिपत्य रोकने के लिए गैर–तटकर–अवरोधकों को लागू करने के लिए उचित अध्ययन होना चाहिए। हर देश यह करता है, इसलिए भारत को भी इस तरीके का व्यापक इस्तेमाल करना चाहिए। किसी एक भारतीय प्रबंधन संस्थान को गैर तटकर अवरोधकों के बारे में उपाय खोजने का काम दिया जाना चाहिए। यह युद्ध नीति का एक हिस्सा होगा।

(v) वैश्वीकरण आग्रह को ढीला करने के लिए क्षेत्रीय और द्विपक्षीय व्यवस्थाओं को विकसित किया जाना चाहिए, इसका दूरगामी प्रभाव पड़ेगा।

अंतरराष्ट्रीय वाणिज्य के महत्वपूर्ण राजनैतिक पहलुओं के संबंध में नीति बनाने के लिए सभी राजनैतिक दलों को मिलाकर एक राष्ट्रीय समूह बनाना होगा।

संक्षेप में भारत को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी राष्ट्रीय व्यूह रचना को आगे बढ़ाना होगा जैसे जापान, चीन, कोरिया, मलेशिया और ताइवान कर रहे है; अन्यथा यह खतरा है कि भारत के लोग अपने देश में अंतरराष्ट्रीय रणनीति को कार्यान्वित करने के अपराधी बनेंगे।

8. सही रास्ता – स्वदेशी राह एवं कार्यनीति

(क)1(अ) जन चेतना

- विकास की पहली अनिवार्य शर्त है जन चेतना। आम आदमी की पहल तथा राष्ट्रीय पुरूषार्थ की प्रभावी अभिव्यक्ति का पूर्ण अवसर।

  (i) विकास की प्रक्रिया 'स्व' के आधार पर, व्यक्ति के समान ही राष्ट्र के 'स्व' (चिति) की अभिव्यक्ति।

  (ii) जनचेतना से हमारा अभिप्राय जनमानस की ऐसी तैयारी से है जब सामान्यजन अपने बुनियादी शाश्वत मूल्यों एवं युगधर्म से प्रेरित होकर अपनी कार्य सिद्धि के लिए नित्य सिद्ध व उद्यत हों।

(आ) अर्थायाम का केन्द्र बिन्दु

- सामान्यजन की बुनियादी आवश्यकताएँ ही अर्थ–व्यवहार का केंद्र बिंदु एवं पहली प्राथमिकता।

  (i) उत्पादक रोज़गार ही न्यूनतम प्राप्ति की एकमात्र गारंटी।

  (ii) अधिकतम उत्पादन एवं विवेकपूर्ण वितरण। आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं के विकेंद्रित उत्पादन पर जोर।

  (iii) बुनियादी जनशिक्षा एवं जन–आरोग्य को उच्च प्राथमिकता।

(इ) आत्मनिर्भरता एवं विकेंद्रीकरण

- रोजगार, ऊर्जा, जैविक पदार्थों के उत्पादन तथा न्यूनतम बुनियादी सुविधाओं के मामले में यथा संभव आत्मनिर्भर गाँव/बस्ती का होना जरूरी है।

  (i) आत्मनिर्भरता का अर्थ स्वयंपूर्णता नहीं वरन् पास–पड़ोस से आदान–प्रदान भी इसमें अभिप्रेत है।

  (ii) स्थानीय संसाधनों से स्थानीय आवश्यकताओं को परंपरागत कुशलता एवं सामुदायिक पहल के आधार पर प्राथमिकता देते हुए पूरा करना।

  (iii) जो कार्य ग्राम/बस्ती स्तर पर हो सकें, उन्हें उसी स्तर पर संपादित करना। आवश्यकता एवं व्यवहार्यता देखते हुए क्रमशः ग्राम

संकुल/हाट–बाज़ार, प्रखंड, जिला, राज्य, क्षेत्र अथवा केंद्र के स्तर पर उत्पादन/ प्रशिक्षण/प्रदर्शन की इकाइयाँ स्थापित की जा सकती है। अनावश्यक रूप से ऊपर की ओर नहीं जाना, यथासंभव आधार स्तर पर कार्य करना, उत्पादन एवं खपत के बीच दूरी घटना। सभी स्तरों पर समता और आत्मनिर्भरता के बुनियादी तत्वों को दृष्टि में रखते हुए आगे बढ़ना।

(iv) विकास प्रक्रिया में छोटे–बड़े कस्बों एवं शहरों की अपनी विशेष भूमिका है। जैसे – शिक्षा एवं शोध के बड़े केंद्र, बड़ी औद्योगिक इकाई तथा प्रशासनिक समन्वय भी जरूरी है। लेकिन शहरीकरण विकास का पर्याय नहीं है।

(v) घर का निर्माण स्थानीय/पड़ोस स्तर पर उपलब्ध सामग्री द्वारा।

(vi) जैव पदार्थों का अधिकाधिक उत्पादन एवं उसी पर मुख्य निर्भरता। जैव विविधता का संरक्षण।

(vii) प्रयोग किए गए पदार्थों का अधिकाधिक पुनर्प्रयोग।

उपर्युक्त दृष्टि से C.S.I.R. एवं D.S.T. के विशेषज्ञों द्वारा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के सही इस्तेमाल के लिए विकसित मॉडल N.B.M.S.* को आगे बढ़ाना उपयोगी सिद्ध होगा।

2 कृषि एवं पशुपालन

(i) कृषि एवं पशुपालन हमारी अर्थ व्यवस्था का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग है। लगभग दो तिहाई जनसंख्या आज भी अपनी आजीविका के लिए कृषि एवं इससे जुड़े काम–धंधों पर निर्भर है। समृद्ध कृषि व्यवस्था के बिना देश स्वस्थ एवं संपन्न बन ही नहीं सकता है।

(ii) स्वदेशी संकल्पना में कृषि क्षेत्र का प्राथमिक दायित्व है कि देश में सभी को पर्याप्त पौष्टिक खाद्यान्न उपलब्ध हो। इस हेतु आम खपत के अन्न, दलहन एवं तिलहन आदि का उत्पादन तेजी से बढ़ाकर आज की तुलना में कम से कम दुगुना अर्थात् 40 करोड़ टन करना होगा। हरित–क्रांति के सीमित क्षेत्रों का देशव्यापी विस्तार इस ढंग से करना होगा कि उसके दुष्प्रभावों से बचा जा सके।

(iii) भूमि संबंधी कानूनों को सरल बनाना होगा और सुधारों एवं हदबंदी कानूनों का समयबद्ध कार्यान्वयन सुनिश्चित करना होगा। बुनियादी बात

*** N.B.M.S. Model :**

N (Nodal), B (Bazar/Big points), M (Medium village/Mandi), S (Small village) – यह माडल उत्पादन–गतिविधियों के समुचित विकेंद्रीकरण का ठोस वैज्ञानिक आधार प्रदान करता है। ग्राम–स्वराज्य, पंचवलयी शासन और चौखम्भा–राज की बुनियादी कल्पनाओं से यह सुसंगत है।

ये होनी चाहिए कि भूमि को जोतने वाला ही उसका नियंत्रक हो, किंतु विधवाओं, विकलांगों, वृद्धों एवं सैनिकों के बारे में विशेष प्रावधान करना होगा।

(iv) कृषि विकास की सबसे प्राथमिक जरूरत है समुचित जल–प्रबंध। सिचाई की परंपरागत तकनीकों, प्रणालियों एवं व्यवस्था को पुनः सुदृढ़ करना होगा। इस कार्य में ग्राम समुदायों की बुनियादी भूमिका होगी। सरकारी एजेन्सियों को प्रेरक एवं प्रोत्साहक की भूमिका निभानी होगी।

(v) गो–पालन हमारी कृषि व्यवस्था एवं समाज जीवन का केंद्र बिंदु रही है। इस महत्वपूर्ण भूमिका को पुनः दृढ़तापूर्वक स्थापित करना होगा। गो–पालन से रासायनिक खादों एवं डीजल आदि पर अत्यधिक निर्भरता घटेगी।

(vi) कृषि तथा औद्योगिक उत्पादों के मूल्यों के बीच सामंजस्य लाना आवश्यक है।

(vii) देश में कई स्थानों पर प्राकृतिक सेंद्रिय खेती के महत्वपूर्ण प्रयोग चल रहे हैं, इन्हें प्रोत्साहित करते हुए अन्य क्षेत्रों में विस्तारित करना आवश्यक है।

(viii) कृषि एवं वन–आधारित प्रसंस्करण उद्योगों का विकेन्द्रित ढाँचा पूरे देश में व्यापक रूप से फैलाना होगा। इससे उत्पादन, रोजगार एवं खपत सभी संतुलित ढंग से बढ़ेंगे।

(ix) कृषि एवं पशुपालन के क्षेत्र में आम आदमी के लिए उत्पादक रोजगार एवं समृद्धि के व्यापक अवसर हैं, अतः इस क्षेत्र को राष्ट्रीय विकास योजना में सर्वोच्च प्राथमिकता देना आवश्यक है।

3 उद्योग एवं व्यापार

- औद्योगिक क्षेत्र में भारत की अपनी परंपरा 18वीं शताब्दी तक बहुत सशक्त रही है। देश के प्रायः सभी भागों में स्थानीय संसाधनों एवं उन्नत तकनीक व कुशलता पर आधारित उद्योगों का व्यापक जाल फैला हुआ था। कपड़ा उद्योग, लोहा एवं इस्पात, समाज के सभी वर्गों की विविध आवश्यकताओं से जुड़े उन्नत हस्तशिल्प वास्तुकला, जैसे अनेक क्षेत्रों में हम विश्व में अग्रणी स्थान रखते थे। विश्व–व्यापार में हमारा स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण था।

(i) स्वदेशी संकल्पना में देश की प्राथमिकताओं को दृष्टि में रखते हुए छोटे–बड़े उद्योगों का व्यापक जाल पूरे देश में फैलाना होगा।

(ii) हर घर/गाँव/बस्ती/शहर में स्थानीय क्षमता, आवश्यकता एवं संसाधनों के अनुरूप उद्योग विकसित होंगे। कृषि एवं वन–संपदा पर आधारित

छोटे–बड़े उद्योगों का जाल (Net Work) पूरे देश में फैला होगा। उद्योगीकरण मात्र कुछ शहरों तक सीमित नहीं रहेगा।

(iii) परंपरागत उद्योगों का सरंक्षण, संवर्धन, एवं तकनीकी समुन्नयन आवश्यक है। कारीगरों एवं महिलाओं के स्थानीय निकायों की उत्पादक इकाइयों का नेटवर्क बनाना होगा।

(iv) पर्यावरण को संरक्षित रखते हुए औद्योगिक विकास।

(v) सार्वजनिक उपक्रमों को राजनैतिक हस्तक्षेप से मुक्त कर व्यावसायिक आधार पर मज़बूत करना।

(vi) मूल्य आधारित स्पर्धा का स्वागत, विकेंद्रीकरण में स्पर्धा शामिल है, लेकिन एकाधिकार की व्यूह रचना से प्रेरित स्पर्धा नहीं। गुणवत्ता हेतु मानक मापदण्ड (I.S.I)।

(vii) निजी उद्योगों के प्रत्येक लाभ में श्रमिकों, आमजन एवं समाज को उचित हिस्सा। जनहित में यह आवश्यक है कि औद्योगिक उत्पादनों का उत्पादन–खर्च घोषित हो और कीमत–अंकेक्षण की व्यवस्था लागू हो।

(viii) पंजाब में लुधियाना, बटाला के इंजीनियरिंग उद्योग, गुजरात में राजकोट के डीजल संयंत्र एवं सूरत का हीरा उद्योग तमिलनाडु के तिरुपुर का वस्त्र उद्योग, मिर्जापुर, भदोही का कालीन उद्योग, कोल्हापुर, बेलगाँव, इंदौर, मुरादाबाद, खुर्जा आदि अनेक स्थानों पर उद्योगों के सफल उदाहरण आगे बढ़ने की राह प्रशस्त करते है।

ऊर्जा

(i) ऊर्जा की भूमिका विकास प्रयासों में महत्वपूर्ण है। विकास–प्रक्रिया को तेज करने के लिए सभी स्तरों पर हर गाँव/बस्ती में पर्याप्त ऊर्जा अति आवश्यक है। इसमें भोजन के लिए ईंधन की सुलभता सबसे पहले क्रम पर है।

(ii) ऊर्जा का सही और संयमित ढंग से प्रयोग न होने पर पर्यावरण के समक्ष गंभीर खतरे पैदा होना अवश्यंभावी है, जिसका सीधा प्रभाव जन–स्वास्थ्य एवं जीवन शैली पर पड़ता है।

(iii) ऊर्जा की संपूर्ण आयोजना में विद्युत–ऊर्जा के साथ ही यांत्रिक और ताप ऊर्जा का भी उपयोग हो। इस तरह से उद्योग केंद्रों की रचना करने से ऊर्जा उपयोग की कार्य दक्षता तथा कीमत–लाभ बढ़ेंगे।

(iv) एक उद्योग केंद्र के लिए स्थानीय ऊर्जा उत्पादन केंद्र जोड़ने से दक्षता एवं लागत–वापसी (Cost-recovery) भी सुधरेंगे। संप्रेषण – हानि (Transmission-losses) तथा स्थापना–खर्च (Capital-Investment) भी

घटेगा। 10 से 20 मैगावाट के ऊर्जा–केंद्र की आयोजना इस दृष्टि से समुपयुक्त (Optimal) है।

(v) ऊर्जा–उत्पादन में खनिज–ईंधनों (Fossil-fuels) की मात्रा कम होनी चाहिए तथा नवीकरणीय स्त्रोतों (Renewable Sources) की मात्रा बढ़नी चाहिए। मिश्रित–स्त्रोतों (Hybridization of Sources) जैसे – सौरताप, वायु, जल, जैविक, गैस, कोयला मिलाकर आयोजन करना आवश्यक है। हर स्थान पर तुलनात्मक उपलब्धता से यह मिश्रण तय होगा।

(vi) 10–12 गाँव के एक संकुल या औसतन 1000 परिवारों की बस्ती के समूह के लिए लगभग 500 के.वी.ए. आपूर्ति को मिश्रित–स्त्रोतों से आपूर्ति करना संभव एवं श्रेयस्कर होगा। इससे केंद्रीय उत्पादन की आवश्यकता घटेगी।

(vii) अभी तक के अनुभवों के आधार पर अब यह समझने और यथोचित निर्णय का समय आ गया है कि बहुत बड़े केंद्रीयकृत ऊर्जा–केंद्रों से लाभ की तुलना में हानियाँ एवं खतरे अधिक हैं।

(viii) देश की आवश्यकताओं के अनुरूप ऊर्जा स्त्रोतों का सर्वेक्षण, अनुसंधान एवं विकास पर बल। घटते वन–क्षेत्र को अगले 10 वर्ष में पुनः वांछित 33 प्रतिशत के स्तर पर लाने के व्यापक संगठित प्रयास शुरू होना अत्यंत आवश्यक है।

5 पूँजी

(i) स्वदेशी संकल्पना में राष्ट्रीय विकास मूलतः स्वदेशी पूँजी एवं संसाधनों पर ही आधारित होगा। विदेशी तकनीक एवं पूँजी जिस क्षेत्र विशेष में, लक्ष्य विशेष हेतु यदि अपरिहार्य होगी तो उसे राष्ट्रहित में बाधा न आते हुए लेने में कोई हर्ज नहीं है लेकिन उसका विपरीत प्रभाव अपने अर्थ–व्यवस्था न पड़े इसका विशेष ध्यान रखना होगा। राष्ट्रीय हितों की कसौटी पर खरा न उतरने वाली विदेशी पूँजी को किसी भी स्थिति में स्वीकार नहीं किया जाएगा। विदेशी पूँजी के बल पर ही विकास होगा, इस मानसिकता से देश के नेतृत्व को बाहर निकलना होगा। स्वदेशी विकल्प की मूल अवधारणा ही स्थानीय समुदाय से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक स्वावलंबन की प्रखर भावना पर टिकी है।

(ii) **वित्तीय-अभियंत्रण युग की आवश्यकता है।** अंतरराष्ट्रीय शक्तियों का सफलतापूर्वक सामना करने के लिए भारत को आजकल के अत्यंत सृजनशील विश्व–वित्त बाजार में उचित दक्षता और तरीकों की जरूरत है। आज बाजार को वित्त निदेशित करता है। प्रवासी भारतीयों के बीच अपने अनुकूल क्षमता और सामान के विशेषज्ञों को साथ लेकर इस

जटिल काम की दिशा को ठीक करना आज की स्थिति में अपरिहार्य है।

6 **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी**

(i) विकास की स्वदेशी प्रक्रिया में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। ज्ञान–विज्ञान कहीं से भी, सदैव स्वागत है। **आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।**

(ii) समय के साथ आगे बढ़ना, यही आवश्यक है। आधुनिकता से मुँहमोड़ लेने का अर्थ जड़ता है; यह मूल प्रकृति के विरुद्ध होगा। लेकिन, आधुनिकता का अर्थ पश्चिम का अंधानुकरण नहीं होना चाहिए।

(iii) संसाधनों का बेहतर इस्तेमाल, उत्पादकता बढ़ाना, गुणवत्ता के उच्च मापदंडों को अपनाना तथा जन आवश्यकताओं की पर्याप्त आपूर्ति के लिए प्रयोगों एवं शोध कार्य को समुचित प्रोत्साहन देना जरूरी है।

(iv) राष्ट्रीय सुरक्षा के क्षेत्र में अधुनातन प्रौद्योगिकी को अंगीकार किया जाना चाहिए।

(v) प्रौद्योगिकी – विकास की बुनियादी शर्तें निम्न होंगी –

(क) रोजगार बढ़ें।

(ख) प्रकृति चक्र का संतुलन बना रहे।

(ग) स्वदेशी तकनीकों एवं परंपरागत कुशलताओं को आधार रूप में इस्तेमाल किया जाए।

(घ) संसाधन–उत्पादक–ग्राहक की दूरी घटे।

(च) जन–स्वास्थ्य एवं नैतिक मूल्यों का पोषण हो।

- विदेशी प्रौद्योगिकी को स्वीकारना (Adoption), सुधारना (Adaptation), अस्वीकारना (Rejection) या नई स्वदेशी प्रौद्योगिकी विकसित (Develop) करना उपर्युक्त पाँच कसौटियों से जुड़ा होगा। आज की परिस्थिति से ग्रामीण क्षेत्र से लेकर अंतरराष्ट्रीय स्तर तक तकनीकी का एक सातत्य (Continuity) और बहुविध अंतर–संबंध (Multiplicity) रहेंगे।

7 **शिक्षा**

(i) भारतीय जीवन मूल्यों, परिस्थितियों एवं परिवेश से जुड़ी हुई शिक्षा राष्ट्रीय विकास प्रक्रिया का अत्यंत महत्वपूर्ण अंग है। इस दृष्टि से मौजूदा प्रचलित शिक्षा प्रणाली में क्रांतिकारी बदलाव लाते हुए शीघ्रातिशीघ्र अपनी नई प्रणाली स्थापित करना होगा।

(ii) शिक्षा मूलतः एक सामाजिक दायित्व है। हर गाँव/बस्ती का प्राथमिक कर्त्तव्य होगा कि उनके क्षेत्र में सभी को बुनियादी शिक्षा उपलब्ध हो।

शिक्षा व्यवस्था में सरकार की भूमिका प्रोत्साहन तक सीमित रहेगी। सरकार का एकमेव दायित्व है कि राष्ट्रीय नियोजन का समुचित हिस्सा सभी स्तरों पर शिक्षा के लिए उपलब्ध कराए।

(iii) प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण, शत–प्रतिशत साक्षरता एवं समुचित व्यावसायिक शिक्षा को सर्वाधिक महत्त्व है।

(iv) देश में प्रतिभा, कुशलता एवं शोध का प्रोत्साहन देने के लिए सभी स्तरों पर समुचित व्यवस्था योजनाबद्ध ढंग से होनी चाहिए।

(v) समूची शिक्षा व्यवस्था के संचालन एवं समन्वय हेतु सर्वाधिकार संपन्न एवं संवैधानिक स्वायत्तता प्राप्त राष्ट्रीय शिक्षा पीठ का गठन होना चाहिए।

8 स्वास्थ्य

(i) स्वस्थ्य एवं बलवान बच्चे, महिलाएँ व पुरुष सामाजिक–आर्थिक ढाँचे की रीढ़ हैं। पोषक खाद्यान्न की पर्याप्त उपलब्धता, शुद्ध पेयजल तथा स्वच्छ व सुखद परिवेश की सुनिश्चितता पूरे समाज के आरोग्य को सुदृढ़ आधार प्रदान करेगा।

(ii) सामान्य रोगों से उपचार हेतु परिवार, गाँव/बस्ती में पर्याप्त कुशलता एवं दक्षता होना आवश्यक है। अपने समाज में परंपरागत रूप से अपने निकट परिवेश में उपलब्ध वनस्पतियों व जड़ी–बूटियों से प्राथमिक उपचार की पद्धति रही है, इसका प्रचलन बढ़ाना एवं पुनर्प्रतिष्ठा आवश्यक है।

(iii) रोगों की चिकित्सा के लिए ग्राम–संकुल, जिला, क्षेत्र, राज्य, अंचल एवं राष्ट्रीय स्तर पर पर्याप्त व्यवस्था आवश्यक है। अभी यह व्यवस्था मात्र शहरी क्षेत्रों तक सीमित है, महँगी है और कुछ अपवाद छोड़कर ग्रामीण क्षेत्रों में निष्प्रभावी है।

(iv) चिकित्सा–व्यवस्था के क्षेत्र में तेजी से बढ़ती व्यापारिक प्रवृत्तियों पर कड़ाई से अंकुश लगाना आवश्यक है। विशेष राष्ट्रीय कार्यक्रमों की कड़ाई से समीक्षा करके आवश्यक कदम उठाए जाएँ।

(v) समय की माँग है कि परंपरागत चिकित्सा प्रणालियों जैसे आयुर्वेद, योग, प्राकृतिक, यूनानी, होम्योपैथी आदि के साथ एलोपैथी का उचित सामंजस्य बैठाते हुए समन्वित व संतुलित चिकित्सा प्रणाली लागू हो।

9 महिला और विकास

(i) समाज एवं सरकार द्वारा महिलाओं को शिक्षा और रोज़गार के समान अवसर प्राप्त हों। उनकी सामाजिक सहभागिता का सम्मान हो।

(ii) सामुदायिक सेवाओं एवं अन्य परिवारजनों के सहभाग से घरेलू काम–काज का बोझ कम करना जरूरी है।

(iii) महिलाओं के कुपोषण का असर अगली पीढ़ी पर होता है।

(iv) महिलाओं के घरेलू काम को परिवार एवं समाज द्वारा महत्वपूर्ण योगदान के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए।

(v) विकास से संबंधित प्रायः सभी गतिविधियों में महिलाएँ आज भी सहभागी हैं, जैसे कृषि एवं पशुपालन, पेड़ लगाना एवं संभालना, कारीगरी एवं अन्य उत्पादन व छोटे व्यापार आदि। इनमें विस्तार की पर्याप्त संभावनाएँ हैं। इस महत्वपूर्ण भूमिका को दृष्टि में रखते हुए आवश्यक प्रशिक्षण एवं सहकारी समितियों के संगठित निकाय बनाकर उन्हें सक्रिय करना चाहिए।

10 न्याय व्यवस्था

(i) स्वदेशी दृष्टिकोण अनुरूप न्याय की मौजूदा प्रचलित यूरोपियन पद्धति जिसमें पूरी प्रक्रिया पक्ष–प्रतिपक्ष आधारित होती है, में यह बुनियादी सुधार करना होगा। परंपरागत पंचायती पद्धति को प्राथमिकता दी जाएगी। पंचायत पद्धति का पूरा इस्तेमाल होने के बाद ही आवश्यकतानुसार–संबंधित पक्ष न्याय के लिए प्रतिपक्ष पद्धति की अदालती व्यवस्था का सहारा ले सकेंगे। ऐसा होने से कानूनी प्रक्रिया में होने वाली देरी और खर्चों पर काफी रोक लगेगी। इससे न्यायिक प्रक्रिया सरल–सुलभ एवं सस्ती बन जाएगी।

8(ख). कार्यनीति :

1 **आमजन की एकजुट पहल आवश्यक है।** समग्र विकास के लिए सबको एकजुट होकर आगे आना होगा। इस प्रक्रिया में किसानों, कारीगरों, कामगारों एवं उद्यमियों, विशेषकर महिला एवं युवाओं की अग्रणी भूमिका होगी।

(i) आमजन में अपनी समस्या की समझ एवं स्वयं हल करने की क्षमता का विकास, निकट के समुदाय के साथ मिल कर उसका समाधान खोजने की प्रवृत्ति।

(ii) ग्राम सभा/बस्ती अपने क्षेत्रों में रहने वाले सभी लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं की चिंता करें इस दृष्टि से ग्राम स्तरीय दायित्वों एवं अधिकारों की सूची बनाना।

(iii) हर गाँव/बस्ती का पहला काम होगा कि उसके क्षेत्र में कोई भूखा न रहे। यह दायित्व समाज का है, भूखमुक्त गाँव ही ग्राम स्वाभिमान का मापदंड है।

2 **सामाजिक संस्थाओं की भूमिका को प्रभावी बनाना होगा। इसके लिए निम्न बातें जरूरी हैं।**

(i) ग्राम सभाओं/बस्तियों में जन चेतना का जागरण।

(ii) सामाजिक उत्थान में लगे हुए सामाजिक–सांस्कृतिक–धार्मिक संस्थाओं एवं प्रवृतियों तथा परंपरागत ढाँचे को प्रभावी माध्यम के रूप में स्वीकारना। हर गाँव/बस्ती में रहने वाले अनुभवी एवं अवकाश प्राप्त लोगों को साक्षरता एवं अन्य पहलुओं पर अपने–अपने क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभानी चाहिए।

(iii) सामाजिक संगठन साधन के नाते मूलतः जन आधारित हों, सरकारी अनुदानों पर आश्रित नहीं, विदेशी निर्भरता बिलकुल नहीं। सहयोग या तालमेल किसी भी स्तर पर संभव।

(iv) ग्राम/बस्ती एवं सरकार के बीच समन्वयक, उत्प्रेरक एवं सहयोगी की भूमिका। सरकारी एजेंट की भूमिका नहीं।

(v) जो काम ग्राम/बस्ती अपने स्तर पर नहीं कर सकती उसे ग्राम संकुल स्तर पर संपादित करने के लिए सहायता, संगठन, प्रशिक्षण एवं बाजार व्यवस्था उपलब्ध कराना।

(vi) विकास के नाम पर जन–विरोधी नीतियों एवं प्रवृत्तियों को रोकने के लिए प्रबल जन–संघर्ष की तीन सूत्रीय योजना : 1. स्वयं करेंगे, 2. कुछ आग्रह करेंगे, 3. गलत नहीं होने देंगे।

3 शिक्षण संस्थाओं की भूमिका एक सक्रिय सामाजिक निकाय के रूप में होगी :–

(i) आस–पास के गाँव/बस्ती से सामुदायिक विकास के लिए सर्वेक्षण, डाटा बैंक, प्रशिक्षण, श्रम सहयोग के नाते वे जुडें।

(ii) सामाजिक जागरण के प्रश्नों पर नई पहल खड़ी करें।

(iii) उच्च स्तरीय शिक्षण संस्थाओं के विद्यार्थी अपने शिक्षकों के साथ निर्धारित अवधि के पाठ्यक्रमों के अंतर्गत कुछ चुनी हुई समस्याओं जैसे – साक्षरता, आरोग्य–स्वच्छता, पर्यावरण एवं रोजगार आदि पर कार्य करें। कॉलेज/पॉलिटेकनीक न्यूनतम एक ग्राम संकुल से जुड़ें। बड़े इंजीनियरिंग एवं प्रबंधन संस्थान जैसे आई.आई.टी, एवं आई. आई. एम. आदि अपनी विशेषज्ञता एवं क्षमता के अनुसार राष्ट्रीय प्राथमिकता के महत्वपूर्ण पहलुओं/आयामों से जुड़ें। जैसे – आवास, जल प्रबंधन, परिवहन, वस्त्र उद्योग, ऊर्जा आदि।

(iv) यह जुड़ाव समग्र विकास की दृष्टि से होगा। शिक्षण विधि के रूप में होगा। इस प्रक्रिया में होने वाला खर्च शिक्षण संस्था एवं समाज मिल–जुलकर करेंगे और उत्पादन एवं सेवाओं से भी प्राप्त होगा।

(v) शिक्षकों एवं संचालकों के प्रशिक्षण का दायित्व जिला/क्षेत्रीय/राष्ट्रीय स्तर पर सक्षम संस्थाओं/संस्थानों पर होगा।

(vi) कृषि एवं ग्रामोद्योग क्षेत्र में उत्पादन प्रक्रिया से जुड़े हुए कुशल किसानों एवं कारीगरों को प्रशिक्षित जनशक्ति के रूप में मान्यता देना।

4 **औद्योगिक क्षेत्र की भूमिका नितांत महत्वूर्ण है।** विगत तीन शताब्दियों में औद्योगिक क्षेत्र के समवाय अर्थ–व्यवहार के मुख्य अंग के रूप में उभरे हैं। लेकिन पाश्चात्य प्रतिमान पर आधारित बड़े समवाय (Corporation) अपनी भोगवादी आर्थिक प्रेरणाओं के कारण भंयकर शोषण, विषमता एवं पर्यावरण ह्रास के जनक सिद्ध हुए हैं।

(i) भारतीय दृष्टि से यह आवश्यक है कि औद्योगिक समवाय 'उपभोग को लक्ष्य के स्थान पर साधन' मानते हुए जन कल्याण का सशक्त वाहन बनें। इस दिशा में ठोस एवं संतुलित पहल आवश्यक है।

(ii) सूचना एवं संचार के क्षेत्र में हुई क्रांति से अब यह संभव होना चाहिए कि बड़े औद्योगिक समवायों को पुराने दोषों से मुक्त किया जा सके। पारदर्शिता बढ़े, विषमता घटे, विकेंद्रीकरण हो।

(iii) उपर्युक्त दृष्टि से आगे बढ़ने के लिए पहला कदम यह हो कि भारत के सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के समवायों का दक्षतापूर्वक संचालन किया जाए ताकि उन पर लगे हुए जन–धन का समुचित लाभ देश को अवश्य मिले।

(iv) इससे देश की बचत दर बढ़ेगी और आंतरिक संसाधनों के बल पर विकास प्रक्रिया को गति मिलेगी।

5 **सरकार की भूमिका भी सुनिश्चित होनी चाहिए।**

(i) "सरकार ही सब कुछ करेगी" इस मानसिकता से सरकार स्वयं एवं समाज बाहर आए।

(ii) जो काम स्थानीय समुदाय, ग्राम सभा, बस्ती, संकुल सामाजिक संस्थाएँ अथवा शिक्षण संस्थाएँ कर सकती हैं, उन्हें उसी स्तर पर प्रभावी ढंग से होने दें। इसके लिए पोषक वातावरण का निर्माण एवं आवश्यक संरचनात्मक परिवर्तन किए जाएँ।

(iii) सार्वजनिक गतिविधियों में शासन की कुछ भूमिकाओं को सामाजिक संस्थाओं को सौंपने की प्रक्रिया उस गति से आगे बढ़े जिस गति से संस्थाओं की क्षमता एवं संसाधन बढ़ेंगे।

(iv) प्रशासनिक खर्च घटे।

(v) कृषि योग्य उपजाऊ एवं वन भूमि को अन्य उद्देश्यों के लिए हस्तांतरण/अधिग्रहण नहीं किया जाए।

(vi) समाजहित में रोजगार गारंटी एवं पर्यावरण सरंक्षण के व्यापक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए लक्ष्यबद्ध कर प्रणाली (टार्गेटेड टेक्सेशन) जैसे ब्रिटेन में खनिज ईंधन पर लगने वाला विशेष कर।

(vii) उपभोग खपत पर सामान्यतः कोई सरकारी छूट या अनुदान नहीं। इसका अपवाद केवल दो : पहला, उपेक्षित अतिनिर्धन समाज की बुनियादी आवश्यकताएँ व उत्पादक रोज़गार तथा दूसरा, प्रकृति चक्र को संपुष्ट करने वाली गतिविधियाँ।

(viii) रेल परिवहन को प्रोत्साहन। रेल परिवहन में डीजल के स्थान पर बिजली एवं कोयले के इस्तेमाल को प्राथमिकता। क्लीन कोल टेक्नालॉजी का प्रयोग। जल परिवहन को बढ़ाना। सार्वजनिक वाहनों को प्रोत्साहित करते हुए निजी ऑटो मोबाइल्स के प्रयोग को हतोत्साहित करना।

(ix) समन्वित निवेश–उत्पादन–रोजगार नीति बने।

9. संक्रमण : आज के यथार्थ से आदर्श की ओर

(क) सद्यः स्थिति से समग्र विकास की ओर बढ़ने की प्रक्रिया में मुख्य आधार–अस्त्र जन चेतना है। जन–चेतना का जागरण एवं समाज का मानस बदलना एक जीवंत/जैविक प्रक्रिया है। सहज स्थिति में यह एक क्रमिक प्रक्रिया है। कोई व्यापक सामाजिक उथल–पुथल इसका अपवाद है, जब इस प्रक्रिया की गति बहुत तेज हो जाती है।

(i) हमारी दृष्टि से विकास यात्रा का एक प्रमुख तत्व होगा – क्रमशः बदलाव लाना तथा छोटे सीमित स्तर पर प्रयोग करके विश्लेषण एवं अनुभव के आधार पर आगे बढ़ना। जैसे – वर्तमान स्थिति में केंद्रीय/राज्य स्तरीय कर प्रणाली को पहले लक्ष्यबद्ध कर प्रणाली बनाना, फिर इसे क्रमशः कम करते हुए अंततोगत्वा बहुत सीमित कर देना और इसी अनुपात/गति से स्थानीय कर पद्धति लाना। इसी प्रकार उत्पादन या प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी वांछनीय परिवर्तनों को क्रमशः प्रोत्साहित करते हुए अनावश्यक संयंत्रों/ढाँचों को एक–एक करके घटाते जाना। पेट्रोलियम आयात पर निर्भरता घटाते हुए कोयले एवं अन्य स्रोतों का क्रमशः अधिक बेहतर उपयोग करना। खनिज संपदा के प्रति दूरगामी नीति, भावी पीढ़ियों के हितों के प्रति मानवीय एवं राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाना।

(ख) अपने देश के विभिन्न स्थानों पर चल रहे अनेक प्रयोगों की सफलताओं एवं सीमाओं से सीखते हुए तेजी से कुछ क्षेत्रों में आगे बढ़ा जा सकता है। इस कड़ी में अन्ना हजारे (रालेगण सिद्दी), विजय बोराड़े (अड़गाँव), देवल (म्हैसाल), देवेंद्र भाई (वर्धा), सुरेंद्र सिंह चौहान (मोहद, म०प्र०), वीणूकाले (बांस–शिल्प), लिज्जत महिला उद्योग, बेलंकी (सांगली), कन्याकुमारी में विवेकानन्द केन्द्र के उत्थान कार्यक्रम, गोंडा–चित्रकूट में दीनदयाल शोध संस्थान, वनवासी कल्याण आश्रम (जशपुर), बस्तर–राँची–नरेंद्रपुर में रामकृष्णमिशन के अनुभवों से सीखते हुए जन उत्थान के व्यापक कार्यक्रम आगे बढ़ सकते हैं। इसी प्रकार सरकार द्वारा संचालित गरीबी उन्मूलन या ग्रामीण रोज़गार योजनाओं से सीखकर कुछ ठोस नीतिगत कदम उठानें की दृष्टि प्राप्त होगी।

(i) विकासशील देशों की अभी तक की विकासयात्रा, विदेशी ऋण की वस्तुस्थिति तथा कोरिया, ताइवान, सिंगापुर आदि देशों के आर्थिक विकास कार्यक्रमों तथा इसी परिप्रेक्ष्य में भारत के कुछ राज्यों की प्रगति की गहराई से समीक्षा को ध्यान में रखते हुए दृढ़ता पूर्वक आगे बढ़ना होगा।

(ग) इस विकास–यात्रा के प्रथम चरण में ही हमारी दृष्टि से प्रतिबद्ध कार्यदलों/प्रकोष्ठों का गठन करना होगा। जो विभिन्न आयामों की विस्तृत रूप रेखा तैयार करें तथा उन क्षेत्रों में नई पहल खड़ी करें।

(घ) इस विकास यात्रा में अंतर्विरोधों के कारण भटकाव का खतरा है। आज के संकट और जनता की मूलभूत समस्याओं को पहले किसी भी साधन/पद्धति से सुलझाएँगे और फिर सम्यक विकास की समग्र दृष्टि लाएँगे यह कहना गलत होगा। केवल आपद्धर्म के नाते कुछ विशेष परिस्थिति, अपवाद हो सकती है, जैसे अकाल, महामारी अथवा युद्ध। लेकिन ऐसी आपातस्थिति ही समाज के पुरुषार्थ को सामने लाती हैं। आवश्यकता यह है कि समस्याओं को सुलझाते हुए नई पद्धति को स्थापित करना, इसी क्रम में जन–चेतना का जागरण करना और समाज का आत्म विश्वास बढ़ाना। उदाहरणार्थ : लाल बहादुर शास्त्री द्वारा विशेष परिस्थिति में आह्वान पर देश के करोड़ों लोगों द्वारा एक दिन का उपवास करना एवं उत्पादन बढ़ाना।

(च) इस पूरी प्रक्रिया में राष्ट्रीय आमसहमति उत्पन्न करना एक अनिवार्य शर्त है, इस हेतु योजनाबद्ध प्रयास अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। भारत का अभ्युदय सामाजिक–आर्थिक–बहुआयामी प्रक्रिया है, इसमें उपभोग और उत्पादन के मौजूदा संबंधों में व्यापक बदलाव अपेक्षित है, सही अर्थ में यह एक सांस्कृतिक अभियान है।

10. संकल्प

- **समग्र विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाना समय की माँग है।**

  यही एकमेव शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक मार्ग है, न केवल भारत के लिए अपितु समूचे विश्व के लिए।

  स्वाभाविक गति से अनेक हलचलें इस दिशा में खड़ी हो रही हैं।

  भारतीय सांस्कृतिक अधिष्ठान से जुड़े राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, सर्वोदय जगत्, स्वाध्याय परिवार, गायत्री परिवार जैसे प्रवाह इस कड़ी को आगे बढ़ा रहे हैं।

  कालचक्र का यही संकेत है।

आइए, हम सब मिलकर राष्ट्र में चल रहे इस प्रकार के प्रयासों से प्रेरणा लेकर विकास की प्रक्रिया को पोषित करने हेतु एक सुसंगत एवं व्यवहारिक संरचना तैयार करने वाले इस यज्ञ में जुड़ें।

राजनीतिक शक्ति का प्रजा में विकेंद्रीकरण करके जिस प्रकार शासन की संस्था का निर्माण किया जाता है, उसी प्रकार आर्थिक शक्ति का भी प्रजा में विकेंद्रीकरण करके अर्थव्यवस्था का निर्माण एवं संचालन होना चाहिए । राजनीतिक प्रजातंत्र में व्यक्ति की अपनी रचनात्मक क्षमता को व्यक्त होने का पूरा अवसर मिलता है । ठीक उसी प्रकार आर्थिक प्रजातंत्र में भी व्यक्ति की क्षमता को कुचलकर रख देने का नहीं; अपितु उसको व्यक्त होने का पूरा अवसर प्रत्येक अवस्था में मिलना चाहिए । . . . राजनीति में व्यक्ति की रचनात्मक क्षमता को जिस प्रकार तानाशाही नष्ट करती है, उसी प्रकार अर्थनीति में व्यक्ति की रचनात्मक क्षमता को भारी पैमाने पर किया गया औद्योगीकरण नष्ट करता है । . . . इसलिए तानाशाही की भाँति ऐसा औद्योगीकरण भी वर्जनीय है ।

— *दीनदयाल उपाध्याय*

गांधी जी का जंतर

तुम्हें एक जंतर देता हूँ। जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ :

'जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

– गाँधी जी